ISSN - 2348-2397
APPROVED UGC CARE

SHODH SARITA
Vol. 6, Issue 23, July-September, 2019
Page Nos. 44-47

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

जयशंकर प्रसाद की कृतियों में निहित शैक्षिक तत्वों का अध्ययन

❒ प्रो0 बी0 एल0 जैन*

शोध सारांश

साहित्यकार एवं शिक्षक दोनों ही युग निर्माता होते हैं। साहित्यकार अपनी लेखनी से आदर्श समाज के नव निर्माण में योगदान देता है, तो शिक्षक अपने शिक्षण दायित्व के निर्वाह द्वारा कुंभकार की भांति भावी पीढ़ी को गढ़ता है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ–साथ साहित्यकार की भावानुभूति का प्रकाशन भी होता है। छायावादी काव्य के सुदृढ़ आधारस्तंभ के रूप में प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद कवि होने के साथ–साथ संवेदनशील लेखक तथा शिक्षा जैसे विषय के अच्छे विचारक भी हैं। उनका शिक्षा के प्रति क्या दृष्टिकोण रहा ? यह उनके काव्य के अध्ययन से जानने का प्रयास किया है। भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। छात्रों में अनुशासनहीनता, शिक्षा का व्यवसायीकरण, अध्यापकों की समस्याएं, बालिका शिक्षा की समस्या, किशोर वर्ग का आक्रामक होना, शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्ट नहीं होना आदि अनेक समस्याएं भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त हैं।

Keywords : शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, एवं समाज सुधार के स्वरूप

प्रस्तावना – जयशंकर प्रसाद हिन्दी के युग–निर्माता दार्शनिक, कवि और साहित्यकार हैं। इनका जन्म 30 जनवरी 1889 को वाराणसी उत्तरप्रदेश में हुआ। वे हिन्दी कवि, नाटककार, कथाकार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। जयशंकर प्रसाद एक असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष थे। प्रसादजी के वाङ्मय को देखकर हमें यह अनुभव होता है कि प्रसाद अपने साहित्य में हमें द्रष्टा, स्रष्टा और कलाकार तीनों रूपों में एक साथ, एक समान और एक रस दृष्टिगत होते हैं। उनके सम्पूर्ण साहित्य में बुद्धि और भावना, वस्तु और शैली, आदर्श और यथार्थ, पूर्व और पश्चिम तथा अतीत और वर्तमान का मनोहर सामंजस्य है। ऐसा अद्भुत समन्वयात्मक दृष्टिकोण बहुत कम साहित्यकारों में देखने को मिलता है। प्रसाद को काव्य सृजन की प्रेरणा समस्या पूर्तियों से प्राप्त हुई थी। जिन्होंने अपने उच्च साहित्य आदर्शों के स्निग्ध प्रकाश में हिन्दी के ही नहीं अपितु हिन्दोत्तर साहित्यकारों का भी मार्ग प्रशस्त किया है। उनका साहित्य सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की रसमयी त्रिवेणी का मंगलकारी संगम है, जिसमें शान्ति, शील और सौन्दर्य की मनोमुग्धकारी एवं मन को आध्यात्मिक सुख देने वाली शीतलता विद्यमान है। उनके ऐसे अद्वितीय साहित्य के पढ़ने, सुनने और देखने से मन आह्लादित होता है और मनुष्य उससे प्रेरणा और शिक्षा ग्रहण करता है। प्रसाद केवल चिन्तक और दार्शनिक ही नहीं थे, बल्कि एक उदात्त सामाजिक दृष्टि भी उनमें थी। वे कुछ विशेष आदर्शों को सामने रख कर लिखा करते थे। विख्यात आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने लिखा है– ''प्रसाद जी की यह विशेषता थी कि वे कुछ विशेष आदर्शों के उपासक, युग में नवीन वस्तुस्थिति का, नए युग की स्वस्थ मनुष्यता का संचार करने वाले प्रथम पुरुष थे। उन्होंने अपने समय के आदर्शों की सीमा को, जो संकुचित हो रही थी, इतिहास और मनोविज्ञान की सहायता से बढ़ाने अथवा न बढ़े तो तोड़ने की चेष्टा की। इसके साथ ही प्रसाद जी अतीत के चित्रकार भी कहे जाते हैं, उनके साहित्य का अधिकांश भाग प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के कलापूर्ण चित्रों से सुसज्जित है। उनका मन भारत के अतीत को अंकित करने में अधिक रमा है। इस दृष्टि से उनका साहित्य अन्धकारपूर्ण एवं खण्डहरों में दबे हुए प्राचीन भारतीय वैभव और पराभव के क्षणों की कथनी है, जिसमें आवश्यकतानुसार साहित्यिक कल्पना का यत्र–तत्र सर्वत्र योग है।'' प्राज्ञिक और भावुक प्रसाद कवि के काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, करूणा, वेदना और मानवता के रंग देखने को मिलते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति एक सचेतन उपादान है तो मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन की वैविध्यपूर्ण झांकी चित्रित की गई है। उन्होंने अपने काव्य में अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में अहं तथा इदम् का सफल एवं सार्थक समन्वय करने का प्रयास किया है। उनका 'कामायनी' नामक महाकाव्य छायावाद की ही नहीं समूचे हिन्दी साहित्य की एक कालजयी कृति है जिसमें छायावाद की सभी प्रवृत्तियों का संघात हमें पूरी

*विभागाध्यक्ष – शिक्षा विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ ,(नागौर) राजस्थान

प्रखरता और कल्पनाशीलता के साथ मिल जाता है। उनकी काव्य कृतियां निम्न हैं – चित्राधार, प्रेमपथिक, करूणालय, महाराणा का महत्त्व, कानन–कुसुम, झरना, आँसू, लहर और कामायनी तथा गद्य भाग की ममता, गुण्डा, मधुआ, आकाशदीप, स्कन्दगुप्त, एक घूँट नाटक।

शिक्षा के द्वारा ये आवश्यकताएं पूरी हो तभी उससे व्यक्ति और समाज का कल्याण हो सकेगा। अतः शिक्षा के क्षेत्र में छायावादी कवियों के कृतित्व में शिक्षा के सिद्धान्त, उद्देश्य, एवं समाज सुधार के स्वरूप पर उनके विचारों का अध्ययन किया है।

शिक्षा के सिद्धान्त :

शिक्षा विकसित राष्ट्र की एक अनिवार्य आवश्यकता है। हमारा शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण एवं विवेचन व्यापक और विस्तृत रखने की आवश्यकता है। लिखने और सिखाने के लिए बहुत कुछ किया जा रहा है। इसमें बहुआयामों का अभाव है, जिसके कारण बालकों का सर्वांगीण विकास नहीं हो पा रहा है। अतः शिक्षा के वे मूलभूत सिद्धान्त जो छायावादी काव्य का अध्ययन करने पर प्राप्त किये उनमें है–

1. ज्ञान व्यक्ति के भीतर होता है :

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' महाकाव्य में स्पष्ट किया है कि ज्ञान व्यक्ति के अन्दर ही समाविष्ट रहता है, ऊपर से थोपने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है अन्तर्निहित ज्ञान को बाहर लाना उसे जगाने का कार्य करना। जैसा कामायनी में श्रद्धा ने मनु की पाशविक वृत्तियों का हनन उसके स्वयं के विवेक द्वारा ही करवाया। अतः बहुत आवश्यक है कि शिक्षक अपना कर्त्तव्य पहचाने, बालकों में ज्ञान ठूंसे नहीं वरन् उनके भीतर के ज्ञान को उजागर करें।

2. शिक्षा बालक को यांत्रिक नहीं मनुष्य बनाएं :

जय शंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' में 'मनु' की जो मनः स्थिति है वह आधुनिक मानव का प्रतिनिधित्व कर रही है। मनु जिस निष्क्रियता से घिरते हैं वह उन्हें जीवन की क्षणिकता, व्यर्थता तथा असत्यता के विषय में सोचने के लिए विवश कर देते है।

भौतिक सुख सुविधाओं से घिरा मनुष्य, निरन्तर उन्हें खोने या पाने के गम में ही रहता है। विद्यालयों में शिक्षा भी इसी प्रकार से दी जाने लगी तथा अभिभावक भी बच्चे को एक यान्त्रिक मशीन बनाने पर तुले है, जो उनके अनुसार हर विषय में छात्र 100% अंक हासिल करता रहे। यदि ये सम्भव नहीं तो निरन्तर उन्हें कोसा जाता है। भावनाओं का जीवन में कोई स्थान नहीं। ऐसे में बालक मात्र एक मशीन बन कर रह जाता है। उसकी स्वाभाविक वृत्तियां, योग्यता दब जाती है। उसे छल–प्रपंच युक्त जीवन–पद्धति अपनाने पर अभिभावक तथा शिक्षक मजबूर करते हैं। अतः शिक्षा ऐसी हो जो बालक में प्रेम, करूणा, शान्ति जैसे भावों को भर कर श्रेष्ठ मनुष्य बना सकें।

3. संस्कारों की शिक्षा : सांस्कृतिक संरक्षा का सिद्धान्त :

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के गौरव का गान बहुतायत किया है। 'कामायनी' महाकाव्य तथा 'अताजशत्रु' नाटक में प्रसाद जी ने स्पष्ट किया है कि विश्व में हमारे देश की पहचान ही यहां की सभ्यता, संस्कृति तथा यहां के लोगों के संस्कार के कारण है।

शिक्षा के उद्देश्य

छात्रों और अध्यापकों की विशाल जनसंख्या शिक्षा प्रयोग में लगी हुई है। शिक्षा नीति पर लम्बी–चौड़ी चर्चाएं हो रही हैं, रिपोर्टें तैयार हो रही हैं, परन्तु क्या सीखा जाए ? और क्या सिखाया जाए ? इसका निर्धारण करना कठिन कार्य होता है। अतः महान् शिक्षाविदों, दार्शनिकों, साहित्यकारों एवं समाज सुधारकों के विचारों को जानना कि उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी कौन–कौन से उद्देश्य बताएं है। शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी विचार इस प्रकार है–

1. स्वयं से स्वयं की पहचान करना है :

कभी महात्मा बुद्ध ने कहा था, 'अप्प दियो भव' अर्थात अपने दीपक आप बनो। प्रसाद की कालजयी कृति कामायनी में **श्रद्धा** के माध्यम से 'स्वयं को पहचानो' सूत्र पर प्रकाश डाला। ऐसे ही विचार महान् दार्शनिक सुकरात ने भी प्रकट किए थे। प्रसाद ने शिक्षा का उद्देश्य आत्म–अवलोकन माना है। बालक में यह क्षमता विकसित करना ही शिक्षक का परम कर्त्तव्य है। उनका मानना है कि व्यक्ति यदि स्वयं को ठीक से पहचान ले तो वह उन छोटी–छोटी भावनाओं से ऊपर उठ सकता है, जो उसे अहंकार, क्रोध, घृणा और वैमनस्य की तरफ ले जाती है। 'स्वयं को पहचानों' की प्रक्रिया में व्यक्ति को धीरे–धीरे उसके अन्दर पनपने वाली घृणा, द्वेष, क्रोध, लोभ तथा अन्य बुराईयों के कारणों का ज्ञान हो सकेगा। एक बार जब व्यक्ति यह जान लेता है कि इस निंदनीय विचारों के कारण क्या हैं ? तब वह उनका त्याग कर प्रेम, सहयोग, समन्वय एवं सहानुभूति से सम्पन्न हो सकेगा। छात्र जीवन से ही व्यक्ति को 'स्वयं को जानने' की प्रक्रिया से जोड़ने पर शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी तीनों की सार्थकता एवं प्रभावीपन सुनिश्चित हो सकता है।

2. प्रतिकूल परिस्थितियों में क्षमताओं को उजागर करना :

चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त नाटकों के माध्यम से प्रसाद जी निराशा और पराजय की स्थिति में भी वैराग्य और पलायन का निषेध करते हैं, शक्ति के विद्युतकणों को एकत्र करने का कठिन संकल्प सुनाते हैं– प्रतिकूल से जूझों–लड़ों, यह भाव अपनी सहजता में प्रसाद की कविता का मूलभाव है, लेकिन इस सूत्र के साथ–

यह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्मरंगस्थल है,
है परम्परा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है।

3. राष्ट्रीयता के साथ–साथ विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना :

आज देश फिर विघटन के तिराहे पर खड़ा है। कट्टर साम्प्रदायिक शक्तियां देश को जर्जर कर रही है। क्षेत्रीयता और जातिवाद उग्रवाद का जामा पहन कर देश की अखण्डता को खण्डित कर रहे हैं। सत्ता ने भ्रष्टाचार को संस्थागत रूप दे दिया है। साधारण आदमी के लिए स्वाधीनता पग–पग पर दूभर है। आज भी आशा की किरण वही सामान्य व्यक्ति जानता है जिससे पर्णदत्त और देवसेना ने देश को बचाने के लिए भीख मांगी थी। देश की एकात्मता के लिए आज भी चाणक्य जैसी चातुरी, चन्द्रगुप्त जैसी तेजस्विता और पर्णदत्त जैसे आत्म–बलिदान की आवश्यकता है। प्रसाद जी ने कामायनी में विश्व बन्धुत्व की भावना पर जोर दिया है।

शापित न यहां है कोई, तापित पापी न यहां है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।।

समरसता की इसी वाणी ने सारस्वत प्रदेश में वर्ग–भेद को समाप्त कर दिया और पूरा प्रदेश सुख, शान्ति और समृद्धि से परिपूर्ण हो गया।

जयशंकर प्रसाद ने विश्व बन्धुत्व की भावना पर जोर दिया है। उनके काव्य में देश भक्ति की भावना अच्छी है, किन्तु देश भक्ति के साथ–साथ विश्व बन्धुत्व की भावना रखना भी उतना ही जरूरी है। जब भारत और पाकिस्तान का क्रिकेट मैच होता है तब पूरे भारत में उसके प्रति रोमांच होता है। कुछ लोग तो ये टिप्पणी भी कर देते हैं कि भारत आस्ट्रेलिया से हार जाए किन्तु पाकिस्तान से किसी सूरत में नहीं हारे। ऐसी भावनाएं देश भक्ति की नहीं, बल्कि कट्टर पंथ की निशानी है, जो बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

4. शिक्षा बालक को आनन्द प्रदान करने वाली हो :

छायावादी कवियों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण रहा है कि शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो जो बालक को आनन्द प्रदान कर सकें। यहां आनन्द से तात्पर्य मनोरंजन से नहीं अपितु ऐसी शिक्षा से है जो बालक को ऐसा जीवन जीने के लिए तैयार करती है जिसमें बालक अपने जीवन में क्रिया–कलापों में ऐसा सामंजस्य बैठाए कि किसी भी परिस्थिति में बालक अपने करणीय तथा अकरणीय कर्मों को पहचान सकें, उन्हीं के अनुरूप कर्म करके अपने आपको सुखी बनाए। प्रसाद कृत कामायनी महाकाव्य में सबसे महत्त्वपूर्ण है आनन्दवाद, सुख–दुख में सामरस्य। वास्तविक योगी ओर ज्ञानी सुख और दुख में समान भाव से निर्विकार रहता है, गीता में भी कहा है–

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरूषं पुरूषर्षभ,
सम दुःख सुखं धीरं सोड मृतत्त्वास कल्पते।।

केवल बौद्धिकता से मानवता का कल्याण नहीं होता। उसके साथ भावना का सम्मिश्रण चाहिए। दोनों का सामंजस्य होने से पूर्णता सम्भव है। जब तक ''मैं तु'' की भेद बुद्धि है, तभी तक घृणा, भय, ईर्ष्या और क्रोध आदि भाव सताते है। जब सबके प्रति आत्मीयता हो जाती है तो ये सभी भाव विलीन हो जाते है और आनन्द की सृष्टि हो जाती है। प्रसाद जी ने आनन्दवाद के विषय में ये पंक्तियां भी लिखी है–

सब भेद भाव भुलाकर, दुख–सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे यह मैं हूँ, यह विश्व–नीड़ बन जाता है।

समाज सुधार सम्बन्धित विचारों का चित्रण :

1. शोषण मुक्त समाज का निर्माण : जयशंकर प्रसाद कृत 'आकाशद्वीप', 'गुण्डा', 'मधुआ' कहानियों में एक जागरूक भावात्मक दृष्टिकोण उपस्थित होता है। प्रसाद की कहानियों का संसार सामाजिक यथार्थ न होकर भावात्मक है। वस्तु–जगत् की भौतिक घात–प्रतिघातों की सच्ची तस्वीर और इसकी क्रूरताओं, विषमताओं को उद्घाटित करना उनका उद्देश्य नहीं रहा। अपितु वे भावात्मक मानवता के पक्ष में थे जिसमें उन्होंने समस्त मानव को एक होने का सपना देखा था। इस भाव भूमि पर पहुंच कर न कोई जाति व्यवस्था है, न वर्ण व्यवस्था, न अधिकार–बोध, न संकीर्ण देश–बोध। प्रसाद जी विश्व मंगल के प्रति जागरूक कथाकार थे। 'मधुआ' तथा 'आकश द्वीप' कहानी संग्रह की 'ममता' कहानी सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

2. धार्मिक चेतना : भारत एक धर्मप्राण देश है। यहां की अधिकांश जनता धर्मभीरू है, फलस्वरूप यहां के समाज में अनेक धार्मिक संस्कार व्याप्त हैं किन्तु दुर्भाग्यवश आज हमारे अनेक धार्मिक संस्कार रूढ़ियों और जड़ परम्पराओं में परिवर्तित हो गए हैं। ये जड़ परम्पराएं समाज के उच्च अथवा निम्न सभी वर्गों में व्याप्त है। जयशंकर प्रसाद ने अपने साहित्य में धार्मिक मिथ्याचारों की तीव्र भर्त्सना की है। उन्होंने स्वयं धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का विरोध करके अपना सम्पूर्ण जीवनयापन किया था। धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण प्राचीन रूढ़ियों से पूर्णतः अलग एवं व्यवहारिक था। 'श्रद्धांजलि' संस्मरण में उन्होंने धर्म के प्रति लिखा है कि ''कोई भी अच्छा काम करना धर्म है और उसको करने पर मन को सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। तुम किसी भूखे को भोजन करा दो, तो वह भी धर्म होगा और तुम्हारे मन को शान्ति प्राप्त होगी।''

निष्कर्ष :

अतः स्पष्ट है कि जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविताओं, उपन्यासों, निबन्धों आदि में वर्ण–व्यवस्था, जाति–पाति और छुआछूत की बुराइयों पर कड़ा आक्रमण किया है। इनका एक मात्र उद्देश्य समाज में नई चेतना लाना और सामाजिक परिष्कार करना रहा है। इस तरह कलुषित, रूढ़िगत और सड़ी–गली व्यवस्था के स्थान पर प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना ही इनका परम साध्य रहा है। इस साध्य को प्राप्त करने में प्रमुख साधन है शिक्षा, जिसके माध्यम से समाज से इन विसंगतियों को हटाया जा सकता है।

सन्दर्भ :–

1. प्रेम शंकर, 1994, प्रसाद का काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–34
2. मिश्र रमेश दत्त 1994 'निराला काव्य में मानवीय चेतना' के. एल पचौरी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या–22
3. लोढ़ा, कल्याणमल, 1994, जयशंकर प्रसाद सृष्टि और दृष्टि नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–40
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 2009, कामायनी का पुनर्मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–77
5. वाजपेयी, नन्ददुलारे, 2009, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–22
6. भाटी, देशराज सिंह, 2011, कामायनी : एक विवेचन, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–56
7. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, 2011, जयशंकर प्रसाद, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–40

❒❒❒